# प्राचीन काल में आश्रम व्यवस्था का महत्त्व

**डॉ० श्वेता कुमारी**

हिन्दू सामाजिक संस्थाओं में आश्रम व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतीय मनीषियों ने आश्रम व्यवस्था को संगठित करके विश्व की सामाजिक विचारधारा को अद्वितीय देन दी। इसके मूल में मानव–जीवन की प्रंत्येक अवस्था के मनोवैज्ञानिक एवं नैतिक विचार सन्निहित है। मानव के सर्वांगीण विकास के लिए जीवन में चार आश्रमों की व्यवस्था की गई। वस्तुतः आश्रम व्यवस्था के द्वारा सामाजिक समस्याओं के समाधान की कोशिश की गई। आश्रम मनुष्य के प्रशिक्षण की समस्या से सम्बद्ध है जो संसार की सामाजिक विचारधारा के संपूर्ण इतिहास में अद्वितीय है।

आश्रम शब्द की व्युत्पति 'श्रम' धातु से है जिसका अर्थ है– परिश्रम या प्रयास करना। मूलतः आश्रम जीवन की यात्रा में एक विश्राम स्थल का काम करते हैं जहाँ आगे की यात्रा के लिए तैयारी की जाती है। हिन्दू धार्मिक परम्परा में जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है। पी० एन० प्रभु ने आश्रमों को मोक्ष प्राप्ति की यात्रा में विश्राम स्थल बताया है[1]। हिन्दू व्यवस्था में चार आश्रमों की सकंल्पना की गई है। हिन्दू धर्मशास्त्र मनुष्य की आयु 100 वर्ष मानते हैं तथा प्रत्येक आश्रम के निमित पच्चीस–पच्चीस वर्ष की अवधि निर्धारित करते हैं। विभिन्न आश्रम तथा उनके अन्तर्गत पालन किये जाने वाले आचाारों का हिन्दु शास्त्रकारों ने उल्लेख किया है। आश्रम व्यवस्था का दार्शनिक आधार भी था। मनुष्य के जीवन के चार आश्रम– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और संन्यास क्रमशः ज्ञान–प्राप्ति, सांसारिक जीवन का भोग, संसार त्यागकर ईश्वर की अराधना और अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति के निमित तपश्चर्या की ओर इंगित करते हैं।